ISSN No. : 2394-0344 **REMARKING :** VOL-1 * ISSUE-1*JUNE-2014

छत्तीसगढ़ में मूर्तिशिल्प–एक अध्ययन

नेहा राय
शोध छात्रा,
शासकीय दुधाधारी बजरंग महिला स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
रायपुर

सारांश

भारतीय मूर्तिकला के इतिहास में छत्तीसगढ में निर्मित प्रतिमाओं का विशेष महत्व है। इस क्षेत्र में ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी से लेकर 14 वीं शताब्दी ई. तक मूर्तिकला के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण प्राप्त होते है। कालक्रम एवं शैली उपवर्गो के आधार पर इन प्रतिमाओं को निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है।

मुख्य शब्द : बूढ़ीखार, शताब्दियों, अर्धनारीश्वर, मुखलिंग, शिवरीनारायण, प्रतिमाओं

प्रस्तावना

प्रथम वर्ग के अंतर्गत प्रारम्भिक मूर्तिशिल्प–द्वितीय ईसापूर्व से गुप्त–वाकाटक काल तक अर्थात् पॉचवीं सदी ई. तक।
गुप्तोत्तर कालीन शिल्प अर्थात 500 से 800 ई. तक।
कलचुरि कालीन अर्थात् 1000 ई. तक।
गौड़कालीन मूर्तिशिल्प अर्थात् 1500से 1700 ई. तक।

प्रारम्भिक मूर्तिशिल्प (200 ई.पूर्व–500 ई.)

इस वर्ग की प्रतिमाओं के अंतर्गत अत्यंत कम प्रतिमाएँ उपलब्ध है। इस वर्ग की प्रतिमाओं में बिलासपुर जिले के बूढ़ीखार (मल्हार) नामक स्थान से उपलब्ध शिल्प साक्ष्यों के अनुसार देश की प्राचीनतम अभिलिखित चतुर्भुज विष्णु प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा चारों ओर से उकेर कर बनाई गयी है तथा इसमें यक्ष परम्परा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। लिपि के आधार पर इसे ई. पू. द्वितीय शताब्दी का स्वीकार किया गया है। इसके पश्चात् कुछ शताब्दियों तक मूर्तिशिल्प का कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

लगभग तृतीय–चतुर्थ शताब्दी ई. की दो विशालकाय प्रतिमाएँ पुनः मल्हार में प्राप्त हुई है। इसमें से एक प्रतिमा शिव की है, जिसमें मात्र धड़ प्राप्त हुआ है, कमर के नीचे का हिस्सा खंडित है। दूसरी प्रतिमा मुखलिंग के रूप में अर्धनारीश्वर की प्रतीत होती है। इन प्रतिमाओं में भी यक्ष प्रतिमा का प्रभाव दिखाई देता है।

गुप्तोत्तरकालीन शिल्प (500से800 ई.)

इस वर्ग के अंतर्गत गुप्त–वाकाटक काल के पश्चात् स्थानीय राजवंशों– शरभपुरीय, नलवंशी एवं सोमवंशी काल में निर्मित कलाकृतियॉ आती हैं। इन कला अवशेषों का काल पॉचवीं से आठवीं शताब्दी ई. के आसपास का माना जाता है। इस काल के शिल्प के अंतर्गत स्वतंत्र प्रतिमाओं के साथ मंदिर स्थापत्य के अंतर्गत प्रयुक्त कलाकृतियॉ भी सम्मिलित की गयी है।

इस काल में ताला, सिरपुर, मल्हार, अड़मार खरौद, शिवरीनारायण, राजिम आदि स्थलों में छत्तीसगढ की सर्वश्रेष्ठ कलाकृतियों का निर्माण हुआ। विभिन्न स्थलों में प्रयुक्त पाषाण खंड तथा काल के सूक्ष्मतम अध्ययन से इनका कालक्रम निर्धारित किया गया है। ताला के भग्न जेठानी मंदिर से अनेक विशालकाय प्रतिमाऍ प्राप्त हुई है, जो स्थानीय परतदार पत्थरों से निर्मित है, जिससे काल के प्रभाव से इनकी ऊपरी परतों के क्षरण हो जाने के कारण इन प्रतिमाओं के कलात्मक स्वरूप नष्ट हो गये है।

ताला के भग्न देवरानी जेठानी मंदिर से प्राप्त अद्भुत प्रतिमा

रूद्रशिव प्रतिमा

यहॉ प्राप्त स्थापत्य खंडों के अवशेषों के विश्लेषण से ये प्रतिमाएँ गुप्तकालीन मूर्तियों से अद्‌भुत साम्य रखती है। यहॉ के देवरानी मंदिर का द्वार स्तम्भ भारतीय कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें पुष्पलता वल्लरियों, गंगा–यमुना, उमा–महेश्वर, शिव–पार्वती कर चौसर क्रीड़ा, गंगावतरण, कीर्तिमुख आदि का अत्यंत सुंदर अंकन है। इसके अतिरिक्त ताला से मिली प्रतिमाओं में कार्तिकेय तथा विलक्षण शिव की प्रतिमाएँ उल्लेखनीय हैं।[1]

रायपुर–बिलासपुर राजमार्ग पर बिलासपुर से 30 तथा रायपुर से 85 किलोमीटर की दूरी पर, भोजपूर ग्राम से 7 किलोमीटर एवं रायपुर–बिलासपुर रेल्वे मार्ग के दगौरी स्टेशन से मात्र 2 कि.मी. अमेठी–कांपा ग्राम के समीप मनियारी नदी के तट पर स्थित ताला में दो शैव मंदिर हैं, जो देवरानी–जेठानी के नाम से विख्यात हैं। भारतीय पुरातत्व के पहले महानिदेशक एलेक्जेन्डर कनिंघम के सहयोगी जे.डी. बेलगर को तालागांव की सूचना 1873–74 में तत्कालीन कमिश्नर फिशर ने दी थी। एक विदेशी पुरातत्वेत्ता महिला जोलियम विलियम्स ने इसे चन्द्रगुप्त काल का मंदिर बताया। शरभपुरीय शासकों के राजप्रसाद की दो रानियों देवरानी–जेठानी ने यह मंदिर बनवाया है। पुरातत्वेत्ता इसके काल का निर्धारण पांचवी–छठवीं शताब्दी का करते हैं। इसके समीपस्थ सरगांव का धूमनाथ मंदिर (प्रतिमा विहीन) देव किरारी, धोबिन, गुड़ी में शैव पूजक स्थल मिलें हैं। यहां से ऐतिहासिक नगर मल्हार की दूरी मात्र पांच किलोमीटर है।

जेठानी मंदिर, ताला, बिलासपुर

उत्खनन के बाद जो स्थापत्य व मूर्तिकला का रूप सामने आया है, उससे ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व से दसवीं शताब्दी तक यह अत्यंत समृद्ध स्थल रहा होगा। मूर्तियों की शैली और प्राप्त अवशेषों से पता चलता है कि लंबे काल तक यह स्थल विभिन्न संस्कृतियों की धर्मस्थली रही होगी, जो शैव पूजक थी और यह स्थान तांत्रिकों की अनुष्ठान स्थली रही होगी। चूंकि महाकाल रूद्र शिव की प्रतिमा का अलंकरण बारह राशियों एवं नौ ग्रहों के साथ हुआ है, इसलिए विद्धानों का मत है कि यदि इस प्रतिमा को पुनः प्राण प्रतिष्ठित किया जाये, तो काल सर्प योग के निदान के लिए पूजन हवन के निमित्त शुरू किया जा सकेगा। श्रद्धालुजन यहां महामृत्युजंय जाप करने सहित शिव से संबंधित विधानों की पूजा करने निरन्तर आते हैं। यहां निषाद समाज द्वारा निर्मित राम जानकी मंदिर एवं स्वामी पूर्णानंद महाराज की कुटिया, गौशाला स्थित है।

देवरानी मंदिर 15 मीटर की दूरी पर है। जेठानी मंदिर एवं विशाल जगमोहन ध्वस्त अवस्था में है। ये दोनों ही शिवमंदिर है। मंदिर के तल विन्यास में आरंभिक चन्द्रकला और सीढ़ियें के बाद अर्द्धमण्ड़प, अन्तराल और गर्भगृह तीन प्रमुख भाग है। मंदिर की सीढ़ियों पर शिव के यक्षगण और गंधर्वो की सुंदर आकृतियां डोलोमेटिक लाइस स्टोन पर खुदी हुई हैं। मनियारी नदी में मिलने वाले पत्थरों का प्रयोग यहां किया गया है। निचले हिस्से में शिव–पार्वती विवाह के दृश्य उत्कीर्ण हैं। प्रवेश द्वार के उत्तरी पार्श्व में दोनों किनारों में विशाल स्तंभ के दोनों ओर 6–6 फीट के हाथी बैठी मुद्रा में हैं। दक्षिण की ओर मुख्य प्रवेश द्वार के अलावा पूर्व और पश्चिम दिशा में भी द्वार हैं। मुख्य प्रवेश द्वार पत्थरों के कलात्मक स्तंभ हैं, जिन पर अंकन कमनीयता लिए हुए है। उत्खनन से प्राप्त अन्य मूर्तियों में चतुर्भुज कार्तिकेय की मयुरासन प्रतिमा है, जो निर्लिप्त भाव से दिखाई पड़ती है। द्विभुजी गणेश की प्रतिमा अपने दांत को एक हाथ में लिए हुए चन्द्रमा के प्रक्षेपण के लिए उद्‌यत मुद्रा में है। अर्धनारीश्वर, उमा–महेश, नागपुरूष, यक्ष मूर्तियों में अनेक पौराणिक कथानक झलकते हैं। शाल भंजिका की भग्न मूर्ति में शरीर सौष्ठवता, कलात्मक सौन्दर्य का संतुलित प्रयोग है। एक विशाल चतुर्भुजी प्रतिमा जिसकी भुजाएं तथा आयुध खंडित है, अधिष्ठान भाग भी नहीं है, की भाव भंगिमा से महिषासुरमर्दिनी की मूर्ति का बोध होता है।[2]

देवरानी–जेठानी मंदिर विशिष्ट तल विन्यास, विलक्ष्ण प्रतिमा निरूपण तथा मौलिक अलंकरण की दृष्टि से भारतीय कला में विशेष रूप से चर्चित है। वर्ष 1987–1988 में देवरानी मंदिर के परिसर मं उत्खनन के दौरान एक विलक्षण प्रतिमा प्राप्त हुई थी। यह प्रतिमा भारतीय कला में अपने ढंग की एकमात्र ज्ञात प्रतिमा है। शैव सम्प्रदाय से संबंधित इस प्रतिमा का शिल्प अद्‌भुत है। शिव के रूद्र अथवा अघोर रूप से सामंजस्य होने के कारण सुविधा की दृष्टि से इसका नामकरण रूद्र शिव किया गया है, धारित वारह राक्षिसी के आकर पर इसका कालपुरूष नामकरण कुछ विद्वान करते हैं। इसे स्मारक–स्थल पर सुरक्षित रूप से प्रदर्शित किया गया है। ताला से प्राप्त प्रतिमाओं में यही एक मात्र लगभग परिपूर्ण प्रतिमा है। यह भारी भरकम प्रतिमा 2.54 मीटर ऊंची तथा

1 मीटर चौड़ी है। विभिन्न जीव–जन्तुओं की मुखाकृति से इसके अंग–प्रत्यंग निर्मित होने के कारण प्रतिमा में रौद्र भाव संचारित है। प्रतिमा समपाद स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित है। इस महाकाय प्रतिमा के रूपांकन में कृकलास (गिरगिट), मछली केकड़ा, मूयर, कच्छप, सिंह आदि जीव–जंतु तथा मानव मुखों की मौलिक प्रकल्पना युक्त रूपाकृति अत्यंत ओजस्वी है। इसके शिरोभाग पर मंडलाकार चक्रों में लिपटे हुए दो नाग क्षैतिज क्रम में पगड़ी के सदृश्य दृष्टव्य हैं। नीचे की ओर मुख किये हुए कृकलास के पृष्ठ भाग से नासिका, अग्रपाद से नासिका रंध्र, सिर से नासाग्र तथा पिछलें पैरों में भौंहें निर्मित हैं। बड़े आकार के मेंढक के विस्फारित मुख से नेत्र पटल तथा कुक्कुट के अंडे से नेत्र गोलक बने हैं। छोटे आकार से प्रोष्ठी, मत्स्य से मूंछे तथा निचला ओष्ठ निर्मित है। बैठे हुए मयुर से कान रूपायित हैं। कंधा मकर मुख से निर्मित है। भुजायें हाथी के शुंड से सदृश्य है तथा हाथों की ऊंगलियां सर्प मुखों से निर्मित है। वक्ष के दोनों स्तन तथा उदर भाग पर मानव मुख दृष्टव्य है। कच्छप के पृष्ठ से कटिभाग, मुख से शिशन और उसके जुड़े हुए दोनों अगले पैरों से अंडकोष निर्मित है। अंडकोष पर घंटी के सदृश्य जोंक लटके हुए हैं। दोनों जंघाओं पर हाथ जोड़े विद्याधर तथा कटि पार्श्व में दोनों ओर एक–एक गंधर्व की मुखाकृति है। दोंनों घुटनों पर सिंह मुख अंकित है। स्थूल पैर हाथी के अगले पैर के सदृश्य है। प्रमुख प्रतिमा के दोनों कंधों के ऊपर दो महानाग पार्श्व रक्षक के सदृश्य फन फैलाये हुए स्थित हैं। पैरों के समीप उभय पार्श्व में गर्दन उठाकर फन काढ़े हुए नाग अनुचर दृष्टव्य हैं। प्रतिमा के दाये हाथ में स्थूल दण्ड व खंडित भाग बच रहा है। उनके आभूषणों में हार, वक्ष–बंध, कंकण तथा कटिबंध नाग के कुंडलित भाग से रूपायित हैं। वर्णित प्रतिमा के बांये हाथ में स्थित आयुध, दायें पैर के समीप स्थित नाग तथा अधिष्ठान भाग भग्न हैं। सामान्य रूप से इस प्रतिमा में शैव मत, तंत्र तथा योग के गुह्य सिद्धांतों का प्रभाव और समन्वय दिखलाई पड़ता हैं।[3]

सिरपुर के लक्ष्मण मंदिर परिसर में भारतीय पुरातत्वीय सर्वेक्षण विभाग द्वारा स्थापित संग्रहालय में सिरपुर से प्राप्त अनेक दुर्लभ प्रतिमाएं तथा स्थापत्य खंण्ड संरक्षित कर रखी गयी हैं। ये कलाकृतियां शैव, वैष्णव, बौद्ध तथा जैन धर्म से संबंधित है। ऐसी ही एक अंगड़ाई लेती हुई नायिका की प्रतिमा में सौन्दर्य, अनुराग तथा चपलता का अद्भुत सामंजस्य है। काले पाषाण से निर्मित चतुर्मुख शिवलिंग के प्रशांत मुख पर लास्य के भाव हैं। उनके कंठ तथा जटा–जूट में मुक्ताहार गुंफित है। केशीवध को प्रदर्शित करती हुई प्रतिमा में कृष्ण तथा अश्व का अंकन अत्यंत प्रभावोत्पादक है।

महिषासुरमर्दिनी

प्रतिमा में देवी के अनुग्रह तथा संहारक शक्ति की व्यंजना है। इनके अतिरिक्त यहां के अनेक प्रतिमायें प्रदर्शित हैं जिनमें नृसिंह, अंबिका, चामुड़ा, विष्णु, वाराह, सूर्य प्रतिमा के भाग, शिशु सहित मातृका, तीर्थकर पाश्वनार्थ, दुर्गा, नाग पुरूष तथा बुद्ध विशेष महत्वपूर्ण हैं। सिरपुर सें संग्रहित नाग पुरूष की एक मानवाकार प्रतिमा रायपुर संग्रहालय में भी प्रदर्शित है।

धातु प्रतिमाय

सातवीं–आठवीं सदी ईस्वीं में सिरपुर धातु प्रतिमाओं के निर्माण के केन्द्र के रूप में स्थापित हो चुका था, इस काल में सिरपुर महायान धर्म का प्रसिद्ध केंद्र था। सिरपुर में सर्वप्रथम 1939 में धातु प्रतिमाओं का भण्डार प्राप्त हुआ। यहां से प्राप्त धातु प्रतिमायें रायपुर, नागपुर, नई दिल्ली स्थित संग्रहालयों तथा मुम्बई के भारतीय विद्या भवन में संरंक्षित हैं। सिरपुर से प्राप्त धातु प्रतिमाओं का प्रदर्शन इंग्लैंड़, जर्मनी तथा अमेरिका में किया जा चुका है। सिरपुर की धातु प्रतिमाओं में ''श्री'' एवं ''शील'' का अद्भुत संतुलन है। यहां से प्राप्त धातु प्रतिमाओं में बुद्ध, अवलोकितेश्वर पद्मापाणि, वज्रपाणि, मंजूश्री, तारा आदि के अतिरिक्त ऋषभनाथ तथा विष्णु की धातु प्रतिमायें भी उपलब्ध हुई है। इन पतिमाओं के प्रदीप्त मुख, अर्ध निमीलित नेत्र, वरद मुद्रा युक्त हथेली की अंगुलियों एवं परिधान के तरंगवत सिलवटों में आध्यात्मिक सौंदर्य के साथ कला का चरमोत्कर्ष व्याप्त है।[4]

उत्तर भारत से दक्षिण–पूर्व की ओर जाने वाले प्रमुख मार्ग पर स्थित होने के कारण मल्हार का महत्व बढ़ा। यह नगर धीरे–धीरे विकसित हुआ तथा वहॉ शैव, वैष्णव व जैन धर्मावलंबियों के मंदिरों, मठों व मूर्तियों का निर्माण बडे स्तर पर हुआ। मल्हार में चतुर्भुज विष्णु की एक अद्वितीय प्रतिलिपी मिली है। उस पर मौर्यकालीन ब्राह्मीलिपी लेख अंकित है। इसका निर्माण–समय लगभग ई. पूर्व 200 है। मल्हार तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्र से विशेषतः शैव मंदिरों के अवशेष मिले जिनसे इस क्षेत्र मे शैव धर्म के विशेष उत्थान का पता चलता है। यहां ईसवी पांचवी से सात शताब्दी तक निर्मित शिव, कार्तिकेय, गणेश, स्क माता, अर्धनारीश्वर आदि की उल्लेखनीय मूर्तिया यहां प्राप्त हुई है। एक शिलापट्ट पर कच्छप जातक की कथा अंकित है। शिलापट्ट पर सूखे तालाब से एक कछुए को उड़ाकर जलाशय की ओर ले जाते हुए दो हंस बने हैं। दूसरी कथा उलूक–जातक की है। इसमें उल्लू को पक्षियों का राजा बनाने के लिए उसे सिंहासन पर बिठाया गया है। सातवीं से दसवीं के मध्य विकसित मल्हार की मूर्तिकला में गुप्तयुगीन विशेषताएं स्पष्ट परिलक्षित हैं। मल्हार में बौद्ध स्मारकों तथा प्रतिमाओं का निर्माण इस काल की विशेषता है। बुद्ध, बोधिसत्व, तारा, मंजुश्री, हेवज्र आदि अनेक बौद्ध देवों की प्रतिमाएं मल्हार में मिली है। उत्खनन में बौद्ध देवता हेवज्र का मंदिर मिला है। इससे ज्ञात होता है कि ईसवीं छठवीं सदी के पश्चात् यहां तांत्रिक बौद्ध धर्म का विकास हुआ। जैन तीर्थकरों, यक्ष–यक्षिणियों, विशेषतः अंबिका की प्रतिमाएं भी यहां मिली है। दसवीं से तेरहवीं सदी तक के समय में मल्हार में विशेष रूप से शिव–मंदिरों का निर्माण हुआ। इनमें कलचुरी संवत् 910 (1167 ईवसीं) में निर्मित केदारेश्वर मंदिर (पतालेश्वर) सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस मंदिर का निर्माण सोमराज नामक एक ब्राह्मण द्वारा कराया गया। धूर्जटि महादेव का अन्य मंदिर कलचुरि नरेश पृथ्वीदेव द्वितीय के शासन–काल में उसके सामंत ब्रह्मदेव द्वारा कलचुरी संवत 915 (1163 ईसवीं) में बनवाया गया। इस काल में शिव, गणेश, कार्तिकेय, विष्णु, लक्ष्मी, सूर्य तथा दुर्गा की प्रतिमाएं विशेष रूप से निर्मित की गयी।

कलचुरी–शासकों, उनकी रानियों, आचार्यों तथा गणमान्य दाताओं की प्रतिमाओं का निर्माण भी उल्लेखनीय है। मल्हार में ये प्रतिमाएं प्रायः काले ग्रेनाइट पत्थर या लाल बलुए पत्थर की बनायी गयी। स्थानीय सफेद पत्थर और हलके–पीले रंग के चूना–पत्थर का प्रयोग भी मूर्ति–निर्माण हेतु किया गया।[5]

खरौद का लक्ष्मणेश्वर मंदिर

खरौद मंदिर का द्वार स्तम्भ, शिवरीनारायण की आयुध पुरूष (शंख, चक्र युक्त) प्रतिमाय राजिम के मंदिरों पर स्थापित प्रतिमाएँ नृसिंह, त्रिविकम्, वामन एवं योगनारण, वराह, गंगा–यमुना तथा सिरपुर के बौद्ध विहार से प्राप्त बुद्ध तथा बौद्ध प्रस्तर तथा धातु प्रतिमाएँ मल्हार की स्कंद माता, जातक कथाओं से उत्कीर्ण स्तम्भ, बौद्ध धर्म की प्रतिमाएँय देउर मंदिर के द्वार शाख, मठपुरैना तथा तुरुरिया की कलाकृतियां विशेष उल्लेखनीय है। बस्तर क्षेत्र में इसी काल में राज्य करने वाले नलवंशी शासकों के काल से सम्बंधित प्रतिमाएँ है, जो अनुमानतः छठी शताब्दी की हैं। यहीं से एक नृसिंह प्रतिमा भी प्राप्त हुई है। भोंगापाल स्थित बौद्ध स्तूप के अवशेष तथा बुद्ध प्रतिमा अत्यंत महत्वपूर्ण है जो बस्तर जैसे अरण्यांचल में बौद्ध धर्म के विस्तार को बताते हैं। इस काल की प्रतिमाएँ एवं कलावशेष गुप्तकालीन कला से अधिक साम्य रखते है।

प्रतिमाओं के सामान्य लक्षण अण्डाकार गोल मुखाकृति, सुंदर भावभंगिमा, शारीरिक अनुपातिकता, सीमित अलंकरण एवं आभूषण तथा पारदर्शी वस्त्राभरण है। इस काल की कुछ प्रतिमाएँ एवं स्थापत्य अवशेष रायपुर स्थित गुरू घासीदास संग्रहालय में सुरक्षित है, जिनमें से प्रमुख सिरपुर की लेखांकित ध्यानीबुद्ध, मर्जुश्री, पार्श्वनाथ; रतनपुर की कल्याण सुंदर मूर्ति; धमतरी के शिव मंदिर के द्वार; देवकुट एवं मल्हार से प्राप्त स्तम्भ उल्लेखनीय है। इसी तरह जगदलपुर, मल्हार एवं बिलासपुर संग्रहालयों में भी शिल्प अवशेष सुरक्षित हैं।[6]

कलचुरिकालीन अर्थात् मध्यकालीन शिल्प (1000 से 1400 ई.)

इस वर्ग के अंतर्गत मुख्यतः कलचुरि तथा उसके समकालीन राजवंशों के काल में निर्मित कलाकृतियॉ आती हैं। वस्तुतः द्वितीय वर्ग की प्रतिमाओं के पश्चात् कला की दृष्टि से थोड़ा–सा अंतराल दिखाई पड़ता है। लगभग दसवीं ग्यारहवीं श्शताब्दी ई. से प्रारम्भ होकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक की प्रतिमाएँ इस वर्ग में सम्मिलित की गयी है। इस काल की प्रतिमाओं की मुखाकृति में थोड़ा–सा परिवर्तन दिखाई देता है, यह पहले की अपेक्षा लम्बवत् है तथा ठुड्डियों में उभार दिखाई देता है। ओष्ठ अब अधिक लम्बे एवं पतले अंकित किये जाने लगे हैं। इसके साथ ही वस्त्रभूषण में इतना आधिक्य हो गया हैं कि भावभंगिमा का पक्ष क्षीण हो गया है। इस प्रकार काल तकनीक की दृष्टि से सर्वत्र एकरसता परिलक्षित होती है। इस काल की प्रतिमाएँ छत्तीसगढ के अनेक स्थलों में प्राप्त हुई हैं।

प्रतिमाओं का निर्माण बलुए पत्थर अथवा काले ग्रेनाइट से किया गया है। ये प्रतिमाएँ वैष्णव, शैव, सौर, शाक्त, जैन एवं बौद्ध सम्प्रदायों से सम्बंधित हैं। इसके अतिरिक्त राजाओं, रानियों, सामंतों तथा उपासकों की प्रतिमाओं का भी निर्माण किया गया था। कलचुरिकालीन मूर्ति शिल्प के अवशेष जॉजगीर, शिवरीनारायण, मल्हार, खरौद, रतनपुर, पाली, तुम्माण, सिरपुर, राजिम, आरंग, कोटगढ़, अड़भार आदि स्थलों से प्राप्त हुए है।

इन स्थलों की प्रतिमाओं में से कुछ कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं, इनमें से कुछ रायपुर संग्रहालय में संरक्षित रतनपुर की स्थानक विष्णु, उमा–माहेश्वर, राजपुरूष, सिरपुर की बुद्ध प्रतिमा, गोमरी का कार्तिकेय, बिरखा–घटियारी के त्रिपुरांतक, अंधकासुर वध एवं नटराज प्रतिमाएँ है। बिलासपुर संग्रहालय में भी इस काल की कुछ महत्वपूर्ण प्रतिमाएँ संरक्षित है, जिनमें मल्हार की डिडिनेश्वरी के रूप में प्रख्यात राजमहिशी, रतनपुर की कण्ठीदेवल किला प्रवेश द्वार, रतनपुर के निकट पुलिया से जुड़ी प्रतिमाएं, महमदपुर की महामाया, आरंग की जैन तीर्थकरों की प्रतिमाएं विशेष उल्लेखनीय हैं।

इसी युग में सरगुजा जिले की त्रिपुरी के कलचुरियों से सम्बंधित प्रमुख कला केंद्र डीपाडीह की दो प्रतिमाएँ यथा त्रिविकम एवं पार्वती रायपुर संग्रहालय में संरक्षित हैं। यहॉ से प्राप्त कार्तिकेंय की प्रतिमा शिल्प की दृष्टि से उच्चकोटि की हैं। कलचुरियों समकालीन फणीनागवंशी शासकों का एक केंद्र कवर्धा के निकट भोरमदेव में स्थित था। यहॉ से भी मूर्तिकला के कुछ श्रेष्ठ उदाहरण उपलब्ध हैं, यहॉ उमा–माहेश्वर प्रतिमा, काल भैरव की बैठी हुई प्रतिमा, द्विभुजी सूर्य तथा दशभुजी गजान्तक मूर्ति प्राप्त हुई हैं। बस्तर के नागवंशियों के काल के महत्वपूर्ण कला केंद्र दंतेवाड़ा, बारसूर, भैरमगढ़ आदि में स्थित थे। इनमें से बारसुर की गणेश प्रतिमा अपने आकार के कारण अत्यंत प्रसिद्ध है, जो 1060 ई. में नागराजा जगदेव भूषण के एक महामंडलश्वर चंद्रादित्य के द्वारा बनवाये चंद्रादितेश्वर मंदिर में लगी अनेक मूर्तियों में से एक है। एक हजार वर्ष पूर्व की यह विशालकाय गणेश प्रतिमा छत्तीसगढ के पुरातत्व की दृष्टि से अद्‌भुत हैं।

भैरमगढ़ में हरिहरहिरण्यगर्भ पितामह की एक श्रेष्ठ प्रतिमा स्थित है। जगदलपुर में स्थित संग्रहालय में इस काल की मूर्तियॉ संरक्षित हैं। काकतीयों की आराध्य दंतेश्वरी देवी के रूप में प्रसिद्ध महिषासुरमर्दिनी की मूर्ति सम्पूर्ण बस्तर की आरध्य देवी हैं, जिसका निर्माण चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में अन्नमदेव ने कराया था। गौड़ मूर्तिशिल्प (1500–1700 ई.) इसके पश्चात् छत्तीसगढ की कला में हास दिखाई पड़ता है, किंतु कला गतिविधियॉ सत्रहवीं–अठारहवी शताब्दी तक चलती रही जिसे सामान्यतः गौंड़कालीन कलाकृतियों के नाम से जाना जाता है। इसके अंतर्गत सामान्यतः गौड़ सरदारों अथवा सिपाहियों की प्रतिमाएँ मिलती हैं। लगभग इसी काल के तीन बंदरों की मूर्तियॉ रतनपुर संग्रहालय में संग्रहित है,

जो गांधीजी के तीन बंदर –बुरा मत कहो, बुरा मत सुना और बुरा मत देखो को पृथक्तः प्रदर्शित कर रही हैं। ये प्रतिमाएँ सोलहवी–सत्रहवी शताब्दी की हैं तथा राजनांदगॉव से प्राप्त हुई हैं।

आरंग से प्राप्त बहुमूल्य रत्न स्फटिक की तीन प्रतिमाएँ भी प्राप्त हुई हैं, किंतु इनका स्पष्टतः काल निर्धारण नही हो सका है। इनमें दो पार्श्वनाथ की तथा शीतलानाथ की है। वर्तमान में ये प्रतिमाएँ दिगम्बर जैन मंदिर, रायपुर में स्थित हैं। इनका काल निर्धारण कठिन कार्य है, फिर भी विद्वानों द्वारा पार्श्वनाथ की एक प्रतिमा सातवीं–आठवीं शताब्दी दूसरी ग्यारहवीं–बारहवरी शताब्दी एवं शीतलनाथ की चौदहवीं–पन्द्रहवीं ई. की स्वीकृत की गयी है।[7]

संदर्भ

1. शर्मा, पालेश्वर प्रसाद एवम् शर्मा, अभिलाषा, छत्तीसगढ का सांस्कृतिक इतिहास, प्रथम संस्करण, 2008, मित्तल एड. संस, नई दिल्ली, पृष्ठ 134–135।
2. छत्तीगसढ पर्यटन मण्डल, रायपुर द्वारा प्रकाशित सामग्री से प्राप्त जानकारी के अनुसार तथा डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू डॉट छत्तीगसढ़ टुरिज्म डॉट नेट से प्राप्त जानकारी के अनुसार।
3. धर्मयुग, मुंबई 3 अप्रैल 1988 के अंक में प्रकाशित लेख से प्राप्त जानकारी के अनुसार।
4. भारतीय पुरातत्वीय सर्वेक्षण विभाग, रायपुर, द्वारा प्रकाशित सामग्री से प्राप्त जानकारी के अनुसार।
5. वही।
6. शर्मा, पालेश्वर प्रसाद एवम् शर्मा, अभिलाषा, पूर्वोक्त, पृष्ठ 135–136।
7. वही, पृष्ठ 136–137।